Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095

मेवाड़ के शिलालेखों में वर्णित राजनैतिक चिन्तन

डॉ० मधुबाला जैन
अतिथि व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय मावली, उदयपुर, राजस्थान।

Article Info
Volume 5, Issue 4
Page Number : 01-14
Publication Issue :
July-August-2022
Article History
Accepted : 05 July 2022
Published : 30 July 2022

शोधसारांश – मेवाड़ के इन शिलालेखों में यहाँ की राजनैतिक संस्थिति भी उजागर होती है जिसमें प्राचीन राजनैतिक संस्थिति के अनुसार ही राज्य के सप्तांगों का वर्णन हमें प्राप्त होता है।

मुख्य शब्द – मेवाड, शिलालेख, राजनैतिक, राजतन्त्र, भारतीय।

प्राचीन भारतीय राजनैतिक संस्थिति– प्राचीन भारतीय परम्परा में राजतन्त्र को ही प्रचलित तथा साधारण शासन व्यवस्था माना गया है। राजा का पद सर्वाधिक सम्मानित और सर्वोच्च माना जाता था। ऋग्वेद में उसे इन्द्र और वरूण के नाम से अभिहित किया गया है।[1] धर्मसूत्रों के अनुसार राजा को शास्त्रविहित कार्य करने चाहिए, सत्य निर्णय देना चाहिए। बाहर–भीतर से पवित्र होना चाहिए इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए। प्रजा को समान दृष्टि से देखना चाहिए और प्रजा का कल्याण करना चाहिए।[2] कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राज्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि राज्य सात अंगों से मिलकर बना है। उसके अनुसार ये सात अंग राज्य की सप्त–प्रकृतियाँ हैं। वे हैं–स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोषदण्ड और मित्र।[3] ये सभी अंग एक–दूसरे के सहयोगी, सहायक और पूरक हैं, अतः सभी को समान महत्व दिया जाना चाहिए।[4] वैदिक काल में राष्ट्र अथवा जनपद का मुखिया राजा होता था। राजा का पद वंश परम्परा पर आधारित था, पर यह भी आवश्यक था कि प्रजा द्वारा राजा का वरण किया जाए। यह अथर्ववेद के एक मंत्र से ज्ञात होता है जिसमें कहा गया है कि 'हे राजा! प्रजा राज्य के लिए तुम्हारा वरण करती है, सब दिशाओं के लोग तुम्हारा वरण करते हैं, तुम राष्ट्र रूपी शरीर के सबसे ऊँचे स्थान पर आसीन रहो और वहाँ रहते हुए उग्र शासक के समान सब में सम्पत्ति का विभाजन करो।[5] राजा को शासकीय कार्यों में निर्णय लेने और उन्हें लागू करने के लिए प्रशासकीय अधिकारियों के सहयोग की आवश्यकता होती थी, जिसके लिए मन्त्री, अमात्य और सचिव की नियुक्ति की जाती थी।

वैदिक साहित्य में राजा के सहायक के रूप में पुरोहित का भी वर्णन प्राप्त होता है। वैदिककालीन शासन व्यवस्था में पुरोहित को राजा की आत्मा माना जाता था। शासन को समृद्ध बनाने के लिए पुरोहित द्वारा राजा को उचित धार्मिक और नैतिक सहायता प्रदान की जाती थी।वेदों के अनुसार पुरोहित का कार्य राजा और उसके कुल को मन्त्र और आध्यात्मिक शक्ति द्वारा रक्षा करना था। यथा–पुरोहित विश्वामित्र ने अपने मन्त्रों तथा आध्यात्मिक शक्ति द्वारा भरतकुल की रक्षा की थी।

मनुस्मृति में मन्त्रियों के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि राजा वंश परम्परागत, शास्त्रज्ञ, शूर, शस्त्र–विद्या में निपुण, कुलीन और परीक्षित व्यक्तियों को अपना अमात्य नियुक्त करे।[6] याज्ञवलक्य स्मृति में

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

भी मन्त्रियों की योग्यता के विषय में कहा गया है कि राजा को ज्ञानी, वंश–परम्परा से आने वाले, धैर्यवान और पवित्र पुरूषों को मन्त्री बनाना चाहिए। मन्त्रणाकाल में मन्त्रियों के अतिरिक्त सभा में अन्य कोई भी व्यक्ति न हो, अन्यथा वह मन्त्रणा गुप्त नहीं रह पायेगी।[7]

प्राचीन काल में स्मृतिकारों ने जनपद के लिए 'देश' शब्द का प्रयोग किया है। जनपद या पुर उसे कहा जाता था जहाँ सभी प्रकार की सुख सुविधाएँ हो अर्थात् प्रजा को आसानी से रोजगार मिल सके, जो फल और पुष्पों से लदा हो, जहाँ एक जगह जल एकत्र न होता हो तथा आसपास सभी आवश्यक चीजें उपलब्ध हो।[8] स्मृतिकालीन शासन अनेक छोटी–छोटी इकाईयों में बंटा हुआ था। शासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी और इसके प्रमुख अधिकारी को 'ग्रामिक' कहा जाता था।[9] राष्ट्र का सम्पूर्ण प्रशासन राजा के अधीन था परन्तु राजा अकेला सम्पूर्ण प्रशासन का कार्यभार नहीं संभाल सकता था अतः राजा नगर में 'सवार्थ चिन्तक' नामक बड़े अधिकारी की नियुक्ति करता था जो प्रजा की सेवा करते हुए उनकी रक्षा के निमित्त किए गए कार्यों का उत्तरदायी होता था।[10]

राष्ट्र की रक्षा के लिए प्राचीनकाल में दुर्ग निर्माण किया जाता था। प्राचीन युद्ध परम्परा तथा उत्तर भारत की भौगोलिक स्थिति के कारण राज्यतत्वों में राजधानी और दुर्ग को अतिमहत्ता प्रदान की गई है। राजधानी देश की सम्पत्ति का दर्पण कही जाती है, यदि वह ऊँची भित्तियों के द्वारा सुदृढ़ नहीं होगी तो सुरक्षा संभव नहीं हो सकेगी। मनु के अनुसार सम्पूर्ण दुर्गों में पर्वतश्रृंखला दुर्ग श्रेष्ठ है अतः सर्व प्रयत्नों के द्वारा इसका आश्रय करना चाहिए क्योंकि यहाँ सर्वाधिक गुण और सुरक्षा होती है।[11] दुर्ग निर्माण की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है कि जैसे दुर्गवासियों को प्रताड़ित करने में शत्रु सफल नहीं होते उसी प्रकार दुर्गाश्रित राजा को भी शत्रु मारने में सफल नहीं होते है। दुर्ग के मध्य स्थित एक धनुर्धर सैकड़ों योद्धाओं के साथ युद्ध में सफलता प्राप्त कर सकता है तथा दशसहस्त्राधिक योद्धाओं के साथ युद्ध कर सकता है, अतः दुर्गनिर्माण राजा के लिए आवश्यक होता है।[12] प्राचीन काल में धान्वदुर्ग (जलविहीन, विस्तृत भूमि), महीदुर्ग (स्थल दुर्ग प्रस्तर खंडों वा ईटों से निर्मित हो), जलदुर्ग (चतुर्दिक जल से आवृत हो), वार्क्षदुर्ग (जिसके चारों ओर कण्टक युक्त, दीर्घाकार वृक्ष, कण्टक–गुल्म आदि हो), नृदुर्ग (जो चतुरंगिणी सेना से सुरक्षित हो), गिरिदुर्ग (पर्वत के मध्य भाग में स्थित दुर्ग, जिसमें कठिनाई से आरोहण हो सके तथा जिसमें एक ही संकीर्ण मार्ग हो।) आदि अनेक प्रकार के दुर्गों का निर्माण किया जाता था।

शासन व्यवस्था के संचालन में कोश का स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है। राजकोष के विषय में प्राचीन ग्रन्थों में अनेकशः वर्णन किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखित है कि जिस राजा का राजकोष रिक्त होता है वह नगरवासियों और ग्रामवासियों चूसता हैं राज्य के सभी कार्य और व्यापार कोश पर आश्रित होते हैं, अतः राजा को चाहिए कि वह सर्वप्रथम कोश के विस्तार के विषय में चिन्ता करें।[13] कोश से ही प्रजारक्षण और प्रजारंजन आदि का सम्पादन संभव हो पाता है। मनु कहते हैं कि जैसे भ्रमर धीरे–धीरे अपने भोजन को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार राजा भी थोड़ा–थोड़ा करके राष्ट्र से वार्षिक कर ग्रहण करे। पशु और सुवर्ण आदि के लाभ का पंचम भाग, धान्य आदि का अष्टम, षष्ठ या द्वादश भाग (उत्पादन और श्रम को देखकर) राजा कर रूप में ग्रहण करें। वृक्ष, माँस, मधु, घृत, गन्ध, औषधि रस, पुष्प, मूल, फल, पत्र शाक, तृण, चर्म आदि का तथा मृद्, पाषाण निर्मित वस्तुओं का षड्भाग कर के रूप में ग्रहण करें।[14] वसिष्ठ धर्मसूत्रों में कर से मुक्त लोगों का वर्णन प्राप्त होता है–जिसका खेत जलविहीन हो, जिसकी फसल बाढ़ से प्रभावित हो, जिसका अन्न और द्रव्य चोरों द्वारा चुरा लिया गया हो अनाथ, सन्यासी, बच्चे, बूढे, ब्रह्मचारियों को दान देने वाले, विधवा आदि से राजा को कर नहीं लेना चाहिए।[15] मनु ने राजकीय कोशवृद्धि के विषय में कहा है कि

पृथ्वी में छिपा हुआ धन यदि कोई भी प्राप्त करता है तब धन का अर्धभाग ब्राह्मणों को प्रदान करे तथा अर्धभाग राजकोश में स्थापित करे। जो धन चोरों से प्राप्त होता है वह धन भी राजकोश में स्थापित करे अथवा उस धन को उसके मालिक को समर्पित कर दे।[16] इस प्रकार कोशवृद्धि के लिए मनु ने विस्तार से अपने विचारों को विवेचित किया है।

दण्ड के विषय में प्राचीन ग्रन्थों में सेना शब्द प्राप्त होता है। ऋग्वेद में दण्ड शब्द सेना, अस्त्र–शस्त्र, युद्ध आदि के विषय में प्रयुक्त हुआ है। देश में आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से रक्षा के लिए तथा प्रजा संरक्षणार्थ सेना रखना अत्यावश्यक होता है। ऋग्वेद में धनुष, बाण, कवच, तूणीर, सारथी, अस्त्रों और रथों आदि युद्ध सामग्री का विशद वर्णन प्राप्त होता है।[17] अथर्ववेद में सीसे के किसी हथियार का वर्णन है–यदि तुम हमारी गाय या अश्व या पुरूष को मारोगे तो हम लोग सीसे (हथियार) से भोंक देंगे और तुम हमारे शक्तिशाली सैनिकों को मारना बंद कर दोगे।[18] स्मृतिकार राजा को परामर्श देते हुए कहते हैं कि राजा को प्रतिदिन सेना का निरीक्षण करते हुए सेनापतियों के साथ विचार विमर्श करते रहना चाहिए।[19] प्राचीन भारतीय राजाओं में एकराष्ट्र बनने का लक्ष्य प्रमुख था। उनकी इसी प्रवृत्ति के कारण शत्रु से युद्ध करते हुए अपने प्राणों का त्याग कर देना वे अपना धर्म समझते थे। स्मृतियों में अनेक स्थलों पर कहा गया है कि युद्ध करना और विजय प्राप्त करना ही क्षत्रिय राजाओं का धर्म हैं।[20]

शत्रु को पराजित करने अथवा शत्रु से अपनी रक्षा करने हेतु एक राजा अपने समान अथवा अपने से अधिक शक्तिशाली राजा से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करता था। दूसरे शब्दों में इसे शक्ति संतुलन का सिद्धान्त कहा जाता था। इससे अन्तर्गत अपने राज्य के आसपास और दूरस्थ राज्यों से राजनैतिक सम्बन्ध बनाये जाते थे। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्वहन में मित्र का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा सुवर्ण, भूमि को प्राप्त करके समृद्धशाली नहीं होता परन्तु सद्मित्र को प्राप्त करके अतिसमृद्धशाली हो जाता है, क्योंकि भविष्य में वह शक्ति सम्पन्न हो जायेगा। एक दुर्बल मित्र भी श्लाघनीय होता है यदि वह गुणवान् हो, उसकी प्रजा संतुष्ट होती है तथा वह दृढ़प्रतिज्ञ हो जाता है।[21] मनु ने मित्र बनाते समय सावधानी रखने की बात कही है। उनके अनुसार ऐसे मित्र से सदा सावधान रहना चाहिए जो छिपकर शत्रु राजा का कार्य करे, जो कभी विरक्त होकर साथ छोड़कर चला जाए, अनायास ही वापस आ जाए, ऐसे मित्र कष्टदायक शत्रु की भाँति होते हैं।[22]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि अतिप्राचीनकाल में स्वर्णयुग था, लोग नीतियुक्त आचरण करते थे, बाद में अनेक जीवन में स्वार्थ प्रवेश कर गया। इसी कारण विद्वानों तथा राजाओं ने नियमों का निर्माण किया और न्याय–नियमों का प्रचलन हुआ।

मेवाड़ के शिलालेखों में राजनैतिक चिन्तन

मेवाड़ में भी प्राचीन राजनैतिक संस्थिति के समान ही राज्य सात अंगों से मिलकर बना था। मेवाड़ के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि यहाँ पर भी राज्य के सात अंग पूर्ण रूप से विद्यमान थे जो एक–दूसरे के सहयोगी, सहायक और पूरक थे। राष्ट्र या जनपद का मुखिया राजा ही था। राजा का पद वंश–परम्परागत होता था। मेवाड़ के इन शिलालेखों में यहाँ के महाराणाओं की वंशावलियाँ प्राप्त होती है इससे गुहिल्य वंश के इतिहास की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। जैसे–संवत् 1331 वर्ष में लिखी हुई चित्तौड़गढ़ पर महासती स्थान के दरवाजे (रसिया की छत्री) की प्रशस्ति में बप्पा से लेकर नरवर्मा तक के राजाओं का उल्लेख हैं। विक्रम संवत् 1708 वर्ष में उत्कीर्ण जगन्नाथराय के मन्दिर की प्रशस्ति में राणा नरपति से लेकर महाराणा जगत्सिंह तक के महाराणाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। इस प्रकार मेवाड़ के महाराणाओं में ज्येष्ठ पुत्र का

राज्याभिषेक किया जाता था। यहाँ के महाराणा उच्च आदर्शों से युक्त थे। वे प्रजा के रक्षण, पालन तथा लोककल्याणकारी कार्यों में रत रहते थे। मेवाड़ के एक प्राचीन लेख से ज्ञात होता है कि यहाँ पर सिद्धराज नामक राजा हुए जिन्होंने बंधुवर्ग तथा स्वयं के द्वारा उपभोग करके बचे हुए धन को याचकों को दे दिया।[23] यहाँ की धरती पर खुम्माण का पुत्र अल्लट हुआ जिसने कभी युद्ध में पीठ नहीं दिखाई, प्रतिस्पर्धियों से कभी झूठ नहीं बोला, मनुष्यों के वचनों को नहीं तोड़ा, परस्त्रियों के प्रति नहीं देखा, त्रैलोक्य के जनों को आश्रय और मुक्ति प्रदान करने वाला था। अल्लट का ही पौत्र शक्तिकुमार राजा को याचकों को दान करने से कर्ण के समान कहते थे, पराक्रम और सत्व की अधिकता के कारण शत्रुवीर उसे पार्थ समझते थे, मर्यादा ओर धैर्य के कारण गुहिल लोग उसे रत्नाकर कहते थे, महिमा के आश्रय के कारण विद्वान् उसे सुमेरू पर्वत कहते थे। उसी का पुत्र आम्रप्रसाद नामक राजा परशुराम के समान घमण्डी क्षत्रियों का संहार करने वाला, वृहस्पति के समान नीतिमार्ग का अनुसरण करने वाला, शिवि के समान त्रस्त जीवों का उपकार करने वाला था।[24] इसी धरा पर हम्मीर राजा हुए जिसने सहस्त्र गायों का दान किया। वह वीर तथा युद्ध के आँगन में धीर था, वाणी की माधुरी से मयूर और तोते की ध्वनि को भयभीत करने वाला था, उसके हाथ में विद्यमान कृपाण शत्रुओं के प्राणों के पवन के आहार से सन्तुष्ट होती हुई, काली काल–सर्पिणी की भाँति चमकती थी। हम्मीर के पुत्र राजा क्षेत्रसिंह की दान की कथा ने स्वर्ग में जाकर चिन्तामणि और कामधेनु के आख्यान पर भी विजय प्राप्त कर ली थी। राजा क्षेत्रसिंह का पुत्र लक्षसिंह था जिसने याचकों के उठे हुए स्वर को दान से शान्त कर दिया, शरणागत व्यक्तियों की रक्षा के लिए पाषाण की सीमा बना दी, सीमाओं पर भयंकर योद्धाओं को खड़ा कर दिया। इसने बार–बार बिना छल के दान देकर गया तीर्थ को कर से मुक्त कर दिया। यह तीर्थों से कर वसूल कर विधिपूर्वक धन इकट्ठा करता तथा तथा तीर्थों के तालाबों में बड़े–बड़े पत्थर लगवाता था। दान देकर प्रशंसा नहीं करता था। पात्र का प्राप्त करके प्रसन्नतापूर्वक तुला पर स्वर्ण का आरोपण करता था। उस राजा लक्षसिंह का पुत्र मोकल था जो कामदेव के समान सुन्दर, गुरूओं के प्रति विनयी, अच्छा विद्वान था, जो शक्ति से पर्वतों को विदीर्ण कर देता था।[25] कलिग्रस्त पृथ्वीतल पर जिसने ब्राह्मणों को कम वृत्ति के कारण हल चलाते हुए देखकर और यह जानकर कि उनकी वृत्ति अपर्याप्त है, उन्हें अंगों सहित वेद पढ़ाने की व्यवस्था की। उसने ऋणमोचन और पापमोचन तीर्थों का निर्माण किया। संसार में प्रसिद्ध अलंकार स्वरूप सेतुमण्डन नामक सुन्दर कुण्ड का निर्माण करवाया। इसके शासन काल में अंगदेश के निवासी भंग हो गए और स्मृतिवन में वृक्ष बन गए। कामरूप (असम) के निवासियों को इसने रूपरहित बना दिया। बंग के रहने वाले लोगों ने गंगा की शरण ले ली और अपने विरूदों को त्याग दिया। निषाद और चीन के निवासी दुखी हो गए। तलवार को बाहर निकालने वाले मोकल के भय से तुरूष (तुर्की) सूख गए। बहुत अधिक शौर्य के कारण अग्नि में इसने शत्रु के रक्त का जल दिया।[26] इस राजा मोकल के शासन काल में कामधेनु कोशालय में घूमती थी, आंगन में कल्पवृक्ष था, चिन्तामणि बिना किसी प्रयास के सचिवों के पास निवास करती थी। अकूप्य धनराशि को प्राप्त कर यह मोकल राजा इसमें अपनी इच्छित राशि प्राप्त करता था। प्रतिदिन कवियों के समीप ही सोता था। इस राजा मोकल के पुत्र महाराणा कुंभा ने पृथ्वी पर शत्रु–राजाओं को शरीर रहित कर दिया। बिल में सोने पर शत्रु–समूह की युद्ध के यज्ञ–कुण्ड में आहुति दे दी। इसने सात तालाब खुदवाये। अपनी किरणों के जाल से चकवा–चकवी को शोकरहित किया। इसने मदमत्त मालव के राजा के मस्तक पर पैर रखकर, युद्ध में सारंगपुर को पुरनिवासी के साथ जला दिया। राजा कुंभकर्ण ने लोगों को अपार आनंद देने वाले कल्याणकारी रामकुण्ड को खुदवाया। राजा कुंभकर्ण ने गीतगोविन्द नामक प्रबन्ध में अपने मन की चित्तवृति को लगाया। विश्व के उपहार के लिए रस से उल्लसित

संगीतराज नामक शास्त्र की रचना की। महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल्ल दाडिमपुर के युद्ध में बाणों की वर्षा की। शत्रु रूपी राजा के मूल को उखाड़ दिया। वह राजा शत्रु–राजाओं को तीव्र ताप देने वाला, तीष्ण द्युति वाला, अपनी किरणों से अंधकार रूपी दुष्टों को दूर करने वाला था। शिव और मनु के मन के अनुकूल चलने वाला था। राजा रायमल्ल ने यंत्रों से युक्त, हलों को चलाने से विचलित, दन्तावलि से व्याकुल, हाथियों, घोड़ों और ऊँटों की आवाज से युक्त, तुमुल (तेज) आवाज से गयासुद्दीन नामक शक राजा के गर्व को गलाते हुए कमजोर किया। जिसने हाटक वंश की हवि को क्रोध की अग्नि में आहुति दे दी। इसने रामा नामक तालाब का विस्तार किया। शंकर नामक महान् सरोवर खुदवाया। इसने गगनचुम्बी तरंगों वाले सेतू से महान् सरोवर की रचना की। इसने माण्डलदुर्ग (माण्डलगढ़) के शिखर पर, मेदपाट की धरती पर जाफर के परिवार से घिरे हुए, वीरों के समूह से युक्त माण्डलगढ़ को ग्रहण किया। इनके कंठ को काटते हुए धरती पर गिरा दिए। यवनों के कंधों को विदीर्ण करके, खेराबाद के वृक्षों को काटकर, अपने असि–दण्ड से शत्रुओं के वंशजों की तथा मालवा के शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। इसने पुत्रहीन व्यक्ति के धन को खजाने में लेने के सिद्धान्त को समाप्त किया। जो भूमि राजाओं द्वारा ब्राह्मणों को दे दी गई, उसके द्वारा उत्पन्न होने वाली कोई भी वस्तु आपत्काल में भी प्रयोग में नहीं लेने की आज्ञा दी। यवनों द्वारा जिन मंदिरों को तोड़ दिया गया ऐसे मंदिरों को एकलिंग के समान ऊँचे–ऊँचे शिखरों वाला बनाया। यह राजा रायमल्ल पारद (पारा) को अपने लिए नहीं करके दूसरों के लिए करता है। वह धर्म का आचरण करता था।[27] राणा रायमल्ल के पुत्र राणा सांगा हुए जो कामदेव के ही अवतार थे। मांडलगढ़ के दुर्ग स्वामी यवन राजा मुजफ्फर को बांधकर जीत लिया। मलेच्छ राजा शम्बर को जीतकर, दुर्जेय गुर्जरेश्वर से कीर्तिपूर्वक अभिषिक्त हुआ।[28] राणा सांगा के पुत्र उदयसिंह राजा हुए जो सम्पूर्ण विश्व रूपी चक्र का एकमात्र आभूषण था। उस राजा ने उदयपुर का निर्माण करवाया।[29] उदयसिंह राजा के पुत्र महाराणा प्रताप हुए जिन्होंने तलवार को अपनी प्रियतमा बनाकर हाथ में लिया। उसके युद्ध में आने पर मानसिंह के साथ आई सेना खण्डित हो गई तथा उल्टी दिशा में भाग गई। इसके बाद अकबर वहाँ पहुँचा और युद्ध किया लेकिन प्रताप को बलशाली समझकर वह आगरा चला गया। अमरसिंह ने खानखाना की स्त्रियों का हरण किया परन्तु महाराणा प्रताप ने उन्हें बहन–बेटियों के समान संतुष्ट कर वापस भेज दिया।[30]

महाराणा प्रताप के पुत्र राणा अमरसिंह हुए जो हित करने वाले, गुरूओं पर कृपा करने वाले थे। लक्ष्य को भेदने वाले, धनुष के ज्ञाता, ब्राह्मणों के कुल का पालन करने वाले तीर्थ स्वरूप थे। राणा अमरसिंह के पुत्र महाराणा कर्णसिंह हुए जो पृथ्वी कुल के तिलक के समान थे जिन्होंने पृथ्वी के चक्र को क्षोभित करते हुए सेना से युक्त उग्र मलेच्छ राजाओं को तृण मानते हुए क्षुभित कर दिया। सिरौंज नामक नगर को जीतकर, जलाकर दिल्ली के राजा को चकित कर दिया। महाराणा कर्णसिंह से जगत्सिंह राजा हुए जिनकी हुंकार सिंह–समूह को वश में कर लेती थी, आँखों से हाथियों को वश में कर लेता था। पृथ्वी को फाड़ने वाले हाथियों को अपनी आवाज से वश में कर लेते थे। वे हाथ में तलवार नहीं उठाते थे। इन्होंने मांघातृ तीर्थ करने पर स्वर्ण तुला दान की। महाराणा जगत्सिंह चिन्तन से भी अधिक देने वाला है। इन्होंने सप्त समुद्रदान और विश्व–चक्र दान किए।[31] महाराणा जगत्सिंह ने श्वेत वर्ण का ऊँचा विष्णु का मन्दिर बनवाया। उन्होंने सोने से मढ़े हुए अश्व, कल्पलता तथा एक हजार गायें दान दी। अच्छे गुण वाले पाँच गाँव, वस्त्रदान, धान्य–दान, रत्न–दान आदि मिश्रिम दान से ब्राह्मणों को संतुष्ट किया। महाराणा जगत्सिंह ने विहार स्थल रूपसागर का निर्माण किया।[32] उसने अपने निवास स्थान में 'मेरूमन्दिर'और पिछोला झील के किनारे 'मोहनमन्दिर' नाम के प्रासाद बनवाये।[33] महाराणा जगत्सिंह के पुत्र राणा राजसिंह हुए जिन्होंने सर्वर्तुविलास

नामक उद्यान लगवाया। उन्होंने दो सौ पचास पल सोने का बना ब्रह्माण्ड–दान एकलिंग जी में दिया।[34] महाराणा राजसिंह के युद्ध के लिए प्रयाण करने पर अंग देश नष्ट–भ्रष्ट हो गया। कलिंग रंगहीन होकर भयभीत हो उठा। बंग दुखी हो गया। उत्कल देश की कलाएँ नष्ट हो गई, मैथिल–देश में शिथिलता छा गई। गौड़ देश का हृदय भय से भर गया। पूर्व देश का अभिमान चूर्ण हो गया। राजसिंह की विजय–यात्रोत्सव में लंका आतंक से व्याकुल हो गई। कोंकण की दिशा रूपी अबला के हाथ कंकण–रहित हो गए। कर्णाटक देश के द्वार बन्द हो गए। मलय काँप उठा, द्रविड़ का स्वामी भाग गया। चोल देश डगमगा गया तथा सेतुबन्ध भय से पताका की तरह काँप उठा। सौराष्ट्र की शासन–व्यवस्था टूट गई, समूचे कच्छ की दशा बिगड़ गई, टट्टा का बाजार उजड़ गया, बलक नष्ट हो गया, कंधार अंधकार से भर गया। दरीबा के लोग नगर छोड़कर कन्दराओं में रहने लगे। मांडल के लोग खुली धरती पर रहने लगे, फूलिया के मनुष्यों के मस्तक धूल में लुढ़क रहे थे। रायला की स्त्रियाँ अपने स्वामियों का अनादर करने लगी। शाहपुरा का सुख नष्ट हो गया, केकड़ी ने दासत्व ग्रहण किया। जहाजपुर चिंतित हो उठा, गौड़ जाति के राजाओं का देश दुःखी हो गया, कच्छवाहों का देश उदास हो गया। रणथम्भौर के लोग रणभूमि में ठिठक गए, फतेपुर के निवासियों का अभिमान चूर्ण हो गया। बयाना के लोगों ने रथों को छोड़ दिया। टोंक, सांभर लालसोट और चाटसू ग्रामों को जीतकर दंडित किया।[35] राणा राजसिंह ने बड़ी गाँव में 'जनासागर' नामक तालाब का निर्माण करवाया।[36] राजसिंह की उम्र जब बारह वर्ष थी तब विभिन्न गाँवों की सीमा में तड़ाग–निर्माण–योग्य भूमि को देखकर वहाँ जलाशय बाँधने का निश्चय किया तथा राजसमन्द नामक झील का निर्माण करवाया।[37] महाराणा राजसिंह से राणा जयसिंह हुए जिन्होंने इस राजप्रशस्ति को उत्कीर्ण करवाया।[38] महाराणा जयसिंह ने जयसमन्द झील का निर्माण करवाया। जयसिंह के पुत्र अमरसिंह (द्वितीय) की आज्ञा से प्रेरित होकर रणछोड़ भट्ट ने जयप्रशस्ति की रचना की। जो किन्हीं कारणवश उत्कीर्ण न हो सकी।[39] महाराणा जयसिंह का पुत्र राणा अमरसिंह द्वितीय हुए जिन्होंने अमरविलास नामक भवन का निर्माण करवाया, तालाब के भीतर जगमन्दिर नामक महल बनाया मानों समुद्र के बीच चाँदी के पहाड़ हो।[40] महाराणा अमरसिंह द्वितीय के पुत्र राणा संग्रामसिंह (द्वितीय) हुए जिन्होंने हठपूर्वक शाहपुरा को भंग कर दिया।[41] महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने मंगल नाम वाले वैद्य को वस्त्र, हथिनी तथा ग्राम समर्पित किए। पुण्डरीक नामक ब्राह्मण को एक गाँव तथा सफेद घोड़ा चन्द्रग्रहण पर प्रदान किया। देवराम नामक ब्राह्मण को पालकी तथा ग्राम समर्पित किया। महाराणा संग्राम सिंह (द्वितीय) सत्पात्र को प्रतिदिन स्वर्णदान के साथ गाय का दान करता था।[42] उनसे महाराणा जगत्सिंह (द्वितीय) उत्पन्न हुए जो शत्रुओं के दर्प का दलन करने वाले, उद्दीप्त जागती हुई भुजाओं की अर्गला वाले ,अपने धर्म में प्रसन्न रहने वाले तथा सज्जनों को प्रसन्न करने वाले थे।[43] इन्होंने जगन्नाथ मंदिर का पुनः जीर्णोद्धार करवाया। धान्य के तीन–चौथाई रहने पर, पाप की क्षुधा से शुक्ल–पक्ष में लोग मरने लगे तब उसने धरती को खोद करके, तोष और कोष को वितरित कर व्यक्तियों के जीवन के लिए द्रव्य दिया तथा महान् प्रासाद कर्म के छल से उसने अकाल को दूर कर दिया।[44] महाराणा जगत्सिंह (द्वितीय) के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह तथा प्रतापसिंह के भोग करके स्वर्ग चले जाने पर उनके पुत्र राणा राजसिंह हुए जो गो तथा ब्राह्मण का पालन करने वाले, धर्म के अवतार गुणों से अलंकृत थे।[45] महाराणा राजसिंह के पुत्ररहित होने से प्रतापसिंह के भाई अरिसिंह मेवाड़ के शासक बने। महाराणा अरिसिंह शत्रुरूपी मृगों के लिए सिंह के समान एकमात्र क्षत्रिय था। उसका पुत्र भीमसिंह मेवाड़ का शासक बना जो कृष्ण का ही ध्यान करने वाला, पुण्य के लिए धन देने वाला, शास्त्र का अभिमानी, सभा में प्रमाणिक वचन बोलने वाला, कल्पवृक्ष के समान हाथ वाला, मधुर वाणी वाला था।[46] महाराणा भीमसिंह ने

उदयपुर में भीमपद्मेश्वर महादेव के मन्दिर की स्थापना की।[47] महाराणा भीमसिंह से महाराणा जवानसिंह हुए। दान, कीर्ति और गुणों में जिसके समान कोई नहीं था। इसने गया तीर्थ में अपने पितरों का पिण्डदान किया। विशाल दण्ड (कर) को हटाया। धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए लाखों रूपये खर्च करते हुए तीर्थ–यात्राएँ की।[48] इसने बहुत सुन्दर सेतु बड़ी नदी पर बनवाया जो पिछोला के नाम से सुशोभित है।[49] महाराणा जवानसिंह के पुत्र सरदारसिंह प्रजा का रंजन करने वाले थे। सद्बुद्धि से युक्त, कम बोलने वाले तथा धर्म में लगे हुए थे। उन्होंने भी पितरों की मुक्ति के लिए यात्रा की, गया में होने वाली क्रिया को किया तथा पिता जवानसिंह की प्रतिज्ञा को पूरा किया।[50] महाराणा सरदारसिंह से राजा स्वरूप सिंह हुए जो नीति के कुपार के रूप में जाने जाते थे।सम्पूर्ण पृथ्वी–तल पर अंग्रेजों के आ जाने पर भी उसने चतुरतापूर्वक प्रजा का पालन करते हुए संधि को स्वीकार नहीं किया। शरण में आए हुए अंग्रेजों की रक्षा की। धर्म का संरक्षण किया। क्षत्रियों के संरक्षण के लिए गोवर्धनपुर बनाया तथा उनका पालन किया। महाराणा स्वरूपसिंह ने अपने नाम से मुद्राएँ टंकित करवाई तथा उसे देश–विदेश में प्रचारित किया। महाराणा स्वरूपसिंह के पुत्र राणा शंभुसिंह हुए जिन्होंने श्रम से थके हुए पथिकों को देखकर, पशु–पालकों को देखकर, कांटो और पत्थरों से युक्त इस भूमि पर स्वच्छ मार्ग बनवाये। इस शंभुराजा ने ग्रन्थों की अलंकार युक्त टीका करवाई। महाराणा शंभुसिंह ने गोकुल चन्द्रमा जी के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। उन्होंने इस मन्दिर के लिए भूवाड़ा, सामता, कविता नामक दस हजार रूपये की उत्पत्ति करने वाले गाँव को समर्पित किया।[51]

इस प्रकार मेवाड़ के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि यहाँ के महाराणाओं ने जीवन–मरण के संघर्ष में अनेक विधर्मियों को अपने पराक्रम के बल पर धूल चटाकर विजयश्री का वरण किया। मेवाड़ के ये सूर्यवंशी महाराणा गौरव में सर्वोपरि माने जाते हैं। सम्पूर्ण भारत के सभी राजा–महाराजा मेवाड़ के महाराणाओं को शिरोमणि मानकर उनके प्रति पूज्य भाव रखते आए हैं। भारत के कई प्राचीन राज्य लुप्त हो गए और अनेक नए राज्य स्थापित हो गए। भारतभूमि ने अनेक परिवर्तन देखे, मुसलमान के राज्य की प्रबल शक्ति के आगे सैंकड़ों हिन्दू राजाओं ने सिर झुकाकर अपने वंश–परम्परा की मान–मर्यादा को उनके चरणों में समर्पित कर दिया किन्तु एक मेवाड़ का राजवंश ही था जो नाना प्रकार के कष्ट अनेक आपत्तियों को सहकर अपनी मान–मर्यादा, कुल गौरव तथा स्वातन्त्र्यप्रियता के लिए सांसारिक सुख–सम्पत्ति और ऐश्वर्य को न्यौछावर करते हुए अपने अटल पथ से कभी विचलित नहीं हुआ।

राज्य के प्रधान अंग राजा के बाद 'अमात्य' का स्थान आता है। मंत्री, अमात्य और सचिव शासकीय कार्यों में निर्णय लेने एवं उन्हें लागू करने में राजा का सहयोग करते हैं। मेवाड़ के इन शिलालेखों में भी इन प्रधान, अमात्य आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। ये अमात्य, प्रधान आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त थे तथा ईमानदारी से राजा का सहयोग करते थे। महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के मंत्रियों में वरिष्ठ धर्मात्मा बिहारीदास हुए जो सर्वाधिकारी पद पर नियुक्त किए गए थे। शास्त्र के जानकार होने के साथ ही सत्य और धर्म के द्वारा ईमानदारी से बीस को बीस ही करते थे। बिहारीदास राजा की अनुमति से दान करते थे। बिहारीदास के मंत्रियों में मुख्य होने पर तथा संग्रामसिंह राजा के वरिष्ठ होने पर दोनों में अनुकूलता प्राप्त हुई।[52] महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के शासन काल में हरिजीत नाम का मंत्री अत्यधिक गुणों वाला तथा पुण्यशालियों में श्रेष्ठ था। वह बुद्धिशाली सभी कार्यों को निर्देश मात्र से ही पूरा कर देता था। संग्रामसिंह की माता देवकुमारिका की विश्वासपात्र परिचारिका प्रेमा का पुत्र ऊदा था जो बुद्धि और बल का समुद्र था। वह राजमाता ऊदा से करने योग्य कार्य को कहती थी। वह दक्ष ऊदा भी कर्म के सागर में कुशल तैरने वाला तथा हितकारी बुद्धि वाला था।[53]

महाराणा जगत्सिंह द्वितीय के शासन काल में कायस्थ देवजित् था जो जगत्सिंह का परम विश्वासपात्र था जिसे अमात्य पद प्रदान किया था। वह प्रेमपूर्वक धर्मनिष्ठ रहते हुए सभी का उपकार करने वाला, मन, वचन और कर्म से प्रेमपूर्वक चित्त वाला था। जो व्यक्ति राजा का अपराध करके, भय से इसकी शरण में आ जाता था। उसे देवजित्, अभय देकर, राजा से सम्मानित वह उसकी रक्षा करता था।[54]

महाराणा अरिसिंह के पुत्र हम्मीर के शासन काल के बाद उसके छोटे भाई भीमसिंह के शासनकाल में विष्णुदत्त नामक अमात्य अद्भूत चित्तवृत्ति वाला था जो अपनी बुद्धि से प्रमत्तों पर भी विजय प्राप्त करने वाला था तथा मोतीराम नामक व्यक्ति राजा के कोठार का सचिव था जो सभी कार्य करने वाला, मान्य, बुद्धिमान तथा सभी सुखों का आलय था।[55]

इस प्रकार मेवाड़ के महाराणाओं के अमात्य सर्वगुणसम्पन्न थे। मेवाड़ के शासकों के इन अमात्यों के अतिरिक्त राजगुरू भी राणाओं को उचित परामर्श देते थे। मेवाड़ में पुरोहितों और राजगुरूओं का भी अत्यधिक सम्मान था। महाराणा मोकल गुरूओं को गरिमा प्रदान करने वाला था।[56] रायमल्ल के गुरू गोपालभट्ट कामनापूर्ण यज्ञ करने वाले थे जिसके स्वस्तिवाचन से सम्पदाएँ बढ़ती थी, राज्य उन्नत होता था, आपदाएँ एवं शत्रु नाश को प्राप्त होते थे।[57] महाराणा राजसिंह के नौकाधिरोहण के अवसर पर जब राजसमुद्र में पर्याप्त जल नहीं था तथा आगामी वर्ष में श्रेष्ठ मुहूर्त नहीं था तब पुरोहित गरीबदास ने वारूण सूक्त का जाप ब्राह्मणों से करवाया। तब इन्द्र ने वर्षा की और राजा का कार्य पूर्ण हुआ।[58]इसी प्रकार महाराणा राजसिंह के राजसमुद्र निर्माण की इच्छा व्यक्त की तब पुरोहित गरीबदास ने तीन अनुकूलताएँ होने पर ही कार्य को शुरू करने की सलाह दी।[59] महाराणा राजसिंह के शासनकाल में बादशाहाँ शाहजहाँ का मंत्री सादुल्ला खान चित्तौड़ पहुँचा तो राजसिंह ने विद्वान् पुरोहित मधुसूदन भट्ट को खान के पास भेजा। तब मधुसूदन भट्ट ने महाराणा के अश्वारोहियों को श्रेष्ठ बताया जिससे शाहजहाँ ने महाराणा को चौदह देश दिलाए। स्वामिभक्त एवं वाक्पटु मधुसूदन ने महाराणा की ऐसी सेवा की।[60] इस प्रकार मेवाड़ में पुरोहितों एवं राजगुरूओं द्वारा भी राजा को देश के हित के लिए परामर्श दिया जाता था तथा इनकी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा देश की रक्षा की जाती थी। राजा भी इन गुरूओं का अत्यधिक सम्मान करता था। सम्मान के साथ ही उन्हें प्रचुर दान भी करता था। महाराणा लाखा ने झोटिंग नामक ब्राह्मण को पिप्पलीकापुरी उदारतापूर्वक दान की। महाराणा रायमल्ल ने अपने गुरू गोपालभट्ट को थूर नामक गाँव दान दिया जिसमें अच्छे–अच्छे गन्ने उत्पन्न होते थे, सुन्दर मूँग की माला उत्पन्न करने वाला पानी सुलभ था, शाली नामक चावल उत्पन्न होते थे, अच्छे आम उत्पन्न होते थे और पानी में कमल खिलते थे।[61]

महाराणा उदयसिंह ने लक्ष्मीनाथ कठौड़ी को भूर वाड़ा गाँव दिया। राणा अमरसिंह ने उन्हें होली नामक ग्राम दिया। लक्ष्मीनाथ के पौत्र कृष्णभट्ट को महाराणा जगत्सिंह ने दो हाथी दिए तथा भैसड़ा गाँव दिया। महाराणा जगत्सिंह ने मधुसूदन शर्मा को आहड़ नामक ग्राम में दो हलवाह जमीन दी।[62]महाराणा जगत्सिंह द्वारा जगन्नाथ राय मंदिर के निर्माण के अवसर पर उन्होंने कृष्णभट्ट को मणि और सोने से युक्त रत्नधेनु का दान किया।[63]

महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय ने पुण्डरीक नामक ब्राह्मण को एक गाँव तथा सफेद घोड़ा दिया। उन्होंने देवराम नामक ब्राह्मण को पालकी तथा हनुमातिय नामक गाँव समर्पित किया। उन्होंने भट्ट कमलकान्त को तिल के ढेर के साथ मोरड़ी नामक गाँव दिया।[64]

महाराणा राजसिंह ने पुरोहित गरीबदास को गुणहंडा और देवपुरा नामक गाँव दिए।[65]

इस प्रकार मेवाड़ के महाराणाओं ने अपने गुरूओं तथा पुरोहितों की पर्याप्त दान दिया।

राज्य के तीसरे अंग के रूप में 'जनपद' आता है। मेवाड़ का प्राचीन नाम 'मेदपाट' है। मेवाड़ की प्रशस्तियों में इसका बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। चित्तौड़गढ़ की रसिया की छत्री की प्रशस्ति में कहा गया है कि– मंदिर की कन्दराओं से युक्त तीर्थों वाले, मनोहर, अपनी कांति के लावण्य से फैले हुए, स्वच्छ मुक्तामणि के समान तालाबों से, आकाश–केसरी को फैलाने वाले, सुन्दर स्त्रियों से युक्त, सौन्दर्य का एकमात्र निकेतन यह मेदपाट का जनपद है। जिसके घोड़े नाग के समान है। मनुष्य गंधर्वपुत्रों के समान हैं, गायें स्वर्ग में उत्पन्न कामधेनू के समान, सुन्दर दृष्टि वाली स्त्रियाँ वाणी की कन्या के समान हैं, शस्त्रधारी योद्धा कामदेव के समान, मन मणि के समान स्वच्छ है। बुद्विमान मनुष्यों का यह देश स्वर्ग के गर्व को दूर करने वाला है।

इसके नागह्रद (नागदा) नाम को अखण्ड पृथ्वी का आभूषण, प्रासाद की पंक्तियों के विभ्रम से शुभ्र कोटिश्री वाले चन्द्रमा का उपहास करता है। प्रौढ़ मुक्तामणि की पृथ्वी की श्री के समान चन्द्रमा के अमृत से उत्पन्न कामदेव की क्रीडा भूमि है। इस पृथ्वी के सौन्दर्य की शोभा से युक्त, अमरपुर को नीचा करते हुए, समृद्धि से इस भूमिखण्ड को ऊँचा करते हुए ऐसे अमरपुर से आकर बप्पा नामक वीतराग शासक ने हारीत ऋषि के चरण–कमलों की उपासना की। एकलिंग की अर्चना तथा हारीत ऋषि की कृपा से बप्पा ने नवीन राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया। उसका पुत्र गुहिल नाम का राजा हुआ जिसके नाम से यह गुहिल्य वंश कहलाया।[66] राजप्रशस्ति में वायुपुराण के अन्तर्गत एकलिंग माहात्म्य में आई हुई कथा का वर्णन है। आँखों में आँसू भरकर पार्वती नंदी से कहती है–'' मैं आज शंकर के वियोग में वाष्प (आँसू) बहा रही हूँ। इस कारण पूर्व प्रदत्त मेरे शाप से तुम वाष्प नामक राजा बनोगे। नागह्रद तीर्थ में रहकर शंकर की आराधना करने पर तुम्हें इन्द्र के समान राज्य प्राप्त होगा। तब तुम पुनः स्वर्ग आ सकोगे।' इसके बाद पार्वती चण्ड नामक गण से बोली कि द्वारपाल होकर भी तुमने आज द्वार की रक्षा नहीं की और अपनी मर्यादा को तोड़ा इसलिए तुम मेदपाट में हारीत नामक मुनि बनोगे वहाँ रहकर शंकर की आराधना करने के बाद तुम पुनः स्वर्ग प्राप्त कर सकोगे।[67] इस प्रकार वाष्प हारीत का शिष्य बना और उसकी आज्ञा से नागह्रदपुर में रहकर उसने एकलिंग शिव का अर्चन किया। प्रसन्न होकर शिव ने उसे वरदान दिए कि वह वंश–परम्परा तक चित्रकूट पर शासन करे और उसका वंश बराबर चलता रहे। यह वाष्प आदित्य उपाधिधारी ग्रहादित्य का ज्येष्ठ पुत्र था।[68] इस प्रकार मेवाड़–प्रदेश पर बाप्पा रावल से लेकर यहाँ के वीर–शासकों ने जीवन–मरण के संघर्ष में अनेक विधर्मियों को अपने पराक्रम के बल पर धूल चटाकर विजयश्री का वरण किया।

राज्य के चतुर्थ अंग के रूप में दुर्ग आता है। विभिन्न प्रकार के दुर्गों में गिरि दुर्ग श्रेष्ठ माना गया है। मेवाड़ के इतिहास में विभिन्न शासकों के द्वारा समय–समय पर दुर्ग निर्माण किया गया। मेवाड़ में 84 दुर्ग हैं। यहाँ के महाराणाओं ने अपने राज्य की रक्षा नीति में दुर्गों के महत्व को समझ कर मेवाड़ पर होने वाले आक्रमणों से रक्षा के लिए दुर्गों का निर्माण करवाया होगा। मेवाड़ की इन प्रशस्तियों में भी यहाँ के दुर्गों का वर्णन प्राप्त होता है। चित्तौड़ की महासतियों में समिद्धेश्वर महादेव के मंदिर में लगी हुई महाराणा मोकल के समय की प्रशस्ति में चित्तौड़ दुर्ग का वर्णन इस प्रकार किया गया है महान् कन्दराओं से गिरा हुआ, दूर से आते हुए गंभीर स्वर से पुष्ट, दूसरे महोदर की भाँति, दूसरे के मन को न जानने वाला, पवित्र कीर्ति वाला यह चित्रकूट नामक पर्वत सुशोभित होता है। जो क्षीरसमुद्र के ऊपर–ऊपर उड़ने वाले राजहंसों के लिए भी अगम्य है, ऐसा चित्रकूट नामक दुर्ग विस्तृत भूमि वाला पृथ्वी का अलंकार है।[69] दुर्ग–निर्माण परम्परा में महाराणा कुंभा का काल स्वर्ण युग कहा जा सकता है। मेवाड़ के 84 दुर्गों में 32 दुर्ग महाराणा कुंभा द्वारा बनवाये गए। उन्होने कुम्भलमेरू जैसे विशाल एवं अजेय दुर्ग का निर्माण करवाया। समुद्र तल से 3568 फीट

की ऊँचाई पर स्थित इस दुर्ग की अत्यधिक ऊँचाई को देखते हुए अबुल फजल ने लिखा है कि यह किला इतनी बुलन्दी पर बना हुआ है कि नीचे से ऊपर की ओर देखने पर सिर से पगड़ी नीचे गिर जाती है। कुम्भलगढ़ दुर्ग महाराणा कुंभा की सैन्य नीति का आधार स्तम्भ कहा जा सकता है। इन गिरिदुर्गों के अतिरिक्त मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय ने तालाब के भीतर जगमन्दिर नामक दुर्ग का निर्माण करवाया मानो समुद्र के बीच चांदी का पहाड़ हो।[70] इसी दुर्ग में महाराणा कर्णसिंह ने शहजादे खुर्रम को शरण दी थी। मेवाड़ के इन दुर्गों के अतिरिक्त कुंभा ने चित्तौड़ के किले पर विजय स्तम्भ का निर्माण करवाया जो 12 फुट ऊँची और 42 फुट चौड़ी जगती पर निर्मित है। यह नीचे से 30 फुट चौड़ा तथा लम्बाई में 122 फुट है। जो स्थापत्य का अजूब नमूना है। इस प्रकार मेवाड़ की धरा पर अनेक दुर्ग प्राप्त होते है।

राज्य के पंचम अंग मे कोष आता है। शासन व्यवस्था के संचालन में कोष का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मेवाड़ के महाराणाओं के कोष की आय का प्रमुख साधन कृषि, पशुपालन तथा उद्योग थे। मेवाड़ में आने वाले विभिन्न देशों के व्यापारियों से विभिन्न प्रकार के कर के रूप में राशि ली जाती थी। जो यहाँ के मन्दिरों के रखरखाव में प्रयुक्त होती थी। सारणेश्वर महादेव के मंदिर की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कर्णाटक, मध्यप्रदेश, लाट, टक (पंजाब का एक भूभाग) तथा अन्य स्थानों से आने वाले वणिकों के द्वारा दान देना निर्धारित था। यह दान मंदिरों की आवश्यक सामग्री और रख–रखाव में काम लिया जाता था।[71] मेवाड़ के कोश की आय का साधन यहाँ की खनिज की उपलब्धता भी थी। जगन्नाथराय प्रशस्ति में कहा है कि मेवाड़ी राजाओं के राज्य में धरती खोदने पर पूर्णरूप से चाँदी निकली।[72] कर–व्यवस्था एवं खनिज सम्पदा के अतिरिक्त यहाँ के महाराणाओं के द्वारा युद्ध में जीते गए शत्रु–राजाओं से दण्ड–स्वरूप धन लिया जाता था जो राजकीय कोष में जाता था। महाराणा जगत्सिंह के प्रधान भागचन्द ने जब बांसवाड़ा पर विजय प्राप्त की तब रावल समरसिंह ने दण्ड–स्वरूप दो लाख रूपये देकर महाराणा की अधीनता स्वीकार की। महाराणा राजसिंह के योद्धाओं ने मांडल को अधीन किया तब उन्होंने दण्ड–स्वरूप बाईस हजार रूपये लिए। बनेड़ा के वीरो ने भी महाराणा को कर स्वरूप बीस हजार रूपए दिए। शाहपुरा के वीरों ने दण्ड–स्वरूप बाईस हजार रूपये दिए। महाराणा राजसिंह के प्रधान फतहचन्द ने रायसिंह की तोड़ा नगरी को जीता तब रायसिंह की माता ने साठ हजार रूपयों का दण्ड भरा। इसी प्रकार देवलिया के रावत हरिसिंह ने महाराणा को पचास हजार रूपये देकर अधीनता स्वीकार की।[73] इस प्रकार शत्रुराजाओं के दण्ड–स्वरूप लिए जाने वाले धन से भी मेवाड़ के शासकों को राजकीय आय होती थी। धनी व्यक्ति पुत्रहीन होकर मर जाए तो उसका धन राजा के खजाने में आ जाता था। ऐसा अर्थशास्त्र के जानकार विद्वान् कहते हैं। मेवाड़ में भी यही नियम लागू था।[74]

मेवाड़ के महाराणाओं ने इस राजकीय कोष का उपयोग राज्य पर आपत्ति आने पर प्रजाहितार्थ किया। इसका श्रेष्ठ उदाहरण महाराणा जगत्सिंह है जिन्होंने मेवाड़ में अकाल पड़ने पर जब शुक्ल पक्ष में लोग मरने लगे तब महाराणाओं ने धरती खोदकर, विशद महल कर्म के छल से उस अकाल को दूर किया तथा तोष और कोष को वितरित कर व्यक्तियों को जीवन के लिए द्रव्य दिया।[75] मेवाड़ के कोष के समृद्ध होने से यहाँ के महाराणाओं ने लोकहितार्थ अनेक मंदिरों, किलों, सागरों, वापिकाओं, धर्मशालाओं आदि का निर्माण एवं जीर्णोद्वार के कार्य किए।

राज्य को छठे अंग में दण्ड आता है। प्राचीन काल में दण्ड का तात्पर्य सेना, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध आदि के विषय में प्रयुक्त होता था। मेवाड़ के महाराणाओं की सेना भी ओज से भरी हुई थी। मेवाड़ के इन शिलालेखों में विभिन्न महाराणाओं की सेना, सेना के अंगों तथा सैन्य–नीति का वर्णन मिलता है। यहाँ के

सूर्यवंशी महाराणाओं ने अपने प्रताप से शत्रु रूपी कीचड़ को सूखा दिया। अपने मुख की श्री को उल्लसित करते हुए दुष्ट खलों का अन्धकार नष्ट हो गया। मेवाड़ के इस गुहिल्य वंश में महाराणाओं की सेना के पास पर्याप्त मात्रा में अश्व तथा हाथी थे। गुहिल–पुत्र राजा भोज के युद्ध के समय प्रयाण के समय घोड़ों के खुरों से उठी हुई धूल अन्तरिक्ष में चली आती है तब ऐसा लगता हैं जैसे बादल छा गए हो। राजा भोज के तेज दौड़ने वाले घोड़ों की आवाज सुनकर युवतियों के असहज हो जाने पर शत्रु जंगल में चले जाते हैं।[76] इसी वंश में नरवाहन नामक राजा हुआ जिसकी चलती हुई सेना के खुरों से उठी हुई धूल से कीचड़ ही जहाँ शेष रह गया हो ऐसा समुद्र बन गया है। जो घोड़ों की लार से पूरा भर गया है।[77] इसी वंश में राणा हम्मीर हुए जिसके घोड़े और मकर के चक्रों से युक्त, चंचल, बलवान जलवाले भारी हाथियों वाले पहाड़ों से युक्त, प्रचुर वीर वाले रत्नों की माला से युक्त, पृथ्वी रूपी समुद्र में उत्पन्न होने वाले इसने युद्ध में विजयप्राप्त कर कर्ण की कीर्ति को सोख लिया।[78] इसी वंश में महाराणा मोकल की सेना के चमकते हुए घोड़ों के खुरों से उड़ाई हुई हवा से उठी हुई धूल आँखों में व्यग्रता उत्पन्न करती है जिससे सूर्य की आँखें मन्द हो गई है। घोड़ों की गतियाँ मन्द हो गई है, शत्रु की स्त्रियाँ उस दिन से दिन–रात का प्रहर जानना भूल गई।[79] इसी वंश में महाराणा संग्राम सिंह (द्वितीय) हुए जिनके युद्ध में दक्ष प्रमुख योद्वाओं ने म्लेच्छों के साथ अद्‌भूत देवासुर की भाँति युद्ध किया। उससे उत्पन्न भूमि का यह अन्तराल जाज्वल्यमान अग्नि की भाँति सुशोभित हुआ। तलवार, बाण, भाले, शक्ति पाश आदि से आकाश सुशोभित हुआ। राजा के योद्धाओं ने म्लेच्छ राजाओं से जयलक्ष्मी को बंदी की तरह ग्रहण किया और युद्ध–भूमि से सभी शिविर आदि उखाड़कर ले आए।[80] इस प्रकार यहाँ के योद्धा अतुलनीय पराक्रम और वीरता से भरे थे। इसका श्रेष्ठ उदाहरण महाराणा राजसिंह के समय का है। जब शाहजहाँ का मंत्री सादुल्ला खां चित्तौड़ पहुँचा तब महाराणा राजसिंह ने अपने पुरोहित मधुसूदन भट्ट को वहाँ भेजा। खान ने जब राणा के अश्वरोहियों की संख्या पूछी तब पुरोहित भट्ट ने कहा–बीस हजार। तब खान ने भट्ट से कहा कि दिल्लीपति की एक लाख संख्या के सामने महाराणा के बीस हजार की कैसे समता की जाए? तब भट्ट ने कहा कि दिल्लीपति की एक लाख तथा महाराणा राजसिंह के बीस हजार अश्वारोहियों को विधाता ने समान बताया है। इस प्रकार यहाँ के योद्धा अपने तेज और प्रताप में कई गुणा अधिक थे। मेवाड़ी सेना के पास पर्याप्त अस्त्र–शस्त्र थे। इसका भी वर्णन प्राप्त होता है। महाराणा राजसिंह की सेना के पास विद्यमान तोपों का वर्णन करते हुए लिखा है कि ये सुन्दर तोपें शत्रुओं का संहार करने वाली कलिकाएँ हैं। बगल में रखे हुए गोलों के बहाने इन्होंने मुण्ड–मालाएँ पहन रखी है। इन तोपों को मौत की दाढ़े, शत्रुओं के प्राणों का संचय करने वाली कंदराएँ तथा पाताल लोक के घड़ियालों का वक्रमुख कहा है।[82]

राज्य के अन्तिम तथा सप्तम अंग में मित्र आता है। राज्य की रक्षा के लिए यहाँ के महाराणाओं ने अन्य राज्यों के राजाओं से मित्रता का सम्बन्ध बनाया था। महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के विजयराज्य में राज्यमाता देवकुमारी द्वारा वैद्यनाथ महादेव के मंदिर की प्रतिष्ठा के समय कोटा नरेश भीमसिंह आए। देशान्तर में रहने वाले दूसरे राजा और डूंगरपुर नरेश रावल रामसिंह अपनी सेना के साथ उसे देखने की ईच्छा से आए।[83] मेवाड़ के महाराणाओं ने न केवल पड़ोसी राज्यों से मित्रता के सम्बन्ध बनाए अपितु यथा संभव अंग्रेजों तथा मुगलों की भी सहायता की। 1914 विक्रम वर्ष में अंग्रेजों की सेना में युद्ध हुआ तो नष्ट होने से बचे हुए अंग्रेज महाराणा स्वरूपसिंह ने उनकी रक्षा की तथा उनका पालन किया।[84] इसी प्रकार महाराणा कर्णसिंह ने दिल्लीपति जहाँगीर से विमुख हुए उसके पुत्र खुर्रम को अपने देश में ठहराया तथा जहाँगीर की मृत्यु हो जाने पर साथ में भाई अर्जुन को भेजकर उसे दिल्ली का स्वामी बनाया। खुर्रम

शाहजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[85] इसी प्रकार महाराणा राजसिंह ने दिल्लीपति औरंगजेब और उसके ज्येष्ठ सहोदर शुजा के बीच भीषण युद्ध होने पर औरंगजेब की सहायता के लिए कुंवर सरदारसिंह को वहाँ भेजा जिसने वहाँ पहुँच कर विजय प्राप्त की। तब औरंगजेब ने उसे देश, अश्व तथा गज प्रदान किए।[86]इस प्रकार मेवाड़ के महाराणाओं ने दूसरे राज्य के राजाओं, मुगलों तथा अंग्रेजों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करके राज्य को समृद्ध बनाया। साथ ही यहाँ के राणाओं ने अन्य प्रदेशों से मित्रता स्थापित कर व्यापारिक सम्बन्धों के द्वारा भी अपने राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया।

इस प्रकार मेवाड़ के इन शिलालेखों में यहाँ की राजनैतिक संस्थिति भी उजागर होती है जिसमें प्राचीन राजनैतिक संस्थिति के अनुसार ही राज्य के सप्तांगों का वर्णन हमें प्राप्त होता है।

संदर्भ–ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, 4/42
2. गौतम धर्मसूत्र 11/2/4–6
3. कौटिलीय अर्थशास्त्र–6/96/1
4. मनुस्मृति–9/296
5. अथर्ववेद–3/4/2
6. मनुस्मृति–7/60
7. याज्ञवलक्य स्मृति–1/344
8. मनुस्मृति–8/22
9. वहीं–7/166
10. वहीं–7/121
11. वहीं–7/89–90
12. वहीं–7/91–94
13. कौटिलीय अर्थशास्त्र–2/1, 2/8
14. मनुस्मृति–7/129
15. वसिष्ठ धर्मसूत्र–19/15
16. मनुस्मृति–8/38–40
17. ऋग्वेद, 6/95
18. अथर्ववेद–1/16/2,4
19. याज्ञवलक्य स्मृति–1/13/329
20. मनुस्मृति–7/87
21. वहीं–7/208
22. वहीं–7/186
23. उदयपुर के पूर्व की ओर एक मील फासले पर हरिसिद्धि माता के मन्दिर की सीढ़ियों का लेख।
24. चित्तौड़गढ़ पर महासती स्थान के दरवाजे (रसिया की छत्री) की प्रशस्ति, श्लोक–39,48,50

25. चित्तौड़गढ़ की महासती में समिद्वेश्वर महादेव के मंदिर में लगी प्रशस्ति, श्लोक–14, 18,19,31,36,38,43,44
26. कुंभलमेरू पर मामादेव के मन्दिर की प्रशस्ति के चौथे पाषाण की चतुर्थी पट्टिका, श्लोक–217, 231, 232
27. श्री एकलिंग जी के निज मंदिर में दक्षिणाद्वार के सामने दीवार में लगी प्रशस्ति, श्लोक–45, 49, 51, 56, 59, 64, 65, 67, 68, 74–78, 83, 84, 86, 90
28. जगन्नाथराय मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–38
29. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ महादेव के मंदिर की प्रशस्ति श्लोक–33
30. राजप्रशस्ति सर्ग 4/31–33
31. जगन्नाथराय मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–41,44,45,62,84,89,120,121
32. जगन्नाथराय मंदिर की प्रशस्ति में मंदिर के वर्णन का श्लोक– 11,17–19,34
33. राजप्रशस्ति सर्ग 5/26
34. वहीं, सर्ग 6/9,30,31
35. वहीं, सर्ग 7/16–23,42
36. वहीं, सर्ग 8/47
37. वहीं, सर्ग 9/4,7
38. वहीं, सर्ग 5/51
39. जयप्रशस्ति, सर्ग 7/15
40. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ महादेव के मंदिर की प्रशस्ति श्लोक–44–45
41. वहीं, श्लोक–46
42. वहीं तृतीय प्रकरण, श्लोक–3,7,12
43. हरबेन जी के खुरे पर शिवालय की प्रशस्ति, श्लोक–9
44. जगत् शिरोमणि मंदिर की प्रशस्ति–श्लोक–18, 19
45. सूरजपोल दरवाजे के भीतर सन्ध्यागिरि मठ के शिवालय की प्रशस्ति।
46. उदयपुर में रामप्यारी की बाड़ी के मंदिर की प्रशस्ति–श्लोक–3,4
47. उदयपुर में भीमपद्मेश्वर महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक–32
48. जगत् शिरोमणि मंदिर की प्रशस्ति–श्लोक–34,36–38
49. गोकुलचन्द्रमा जी के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक–38
50. जगत् शिरोमणि मंदिर की प्रशस्ति–श्लोक–39, 40
51. गोकुलचन्द्रमा जी के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक–41, 43–45, 48, 53, 54, 99
52. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ महादेव जी के मंदिर की प्रशस्ति, द्वितीय प्रकरण, श्लोक– 66–69
53. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ महादेव के मंदिर की प्रशस्ति, पंचम प्रकरण, श्लोक– 2–5
54. उदयपुर में दिल्ली दरवाजे के पास पंचोलियों के मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक– 15–17
55. उदयपुर में भीमद्मेश्वर महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक–39, 40
56. कुम्भलमेरू के मामादेव मंदिर की प्रशस्ति, चतुर्थ पट्टिका, श्लोक–230
57. एकलिंग के निज–मन्दिर में दक्षिणा द्वार के सामने की प्रशस्ति, श्लोक–89

58. राजप्रशस्ति, सर्ग 10, श्लोक–27
59. राजप्रशस्ति,
60. राजप्रशस्ति सर्ग–6, श्लोक–12,13,23
61. एकलिंग जी के मन्दिर में दक्षिणाद्वार के सामने की प्रशस्ति, श्लोक– 39,67,87
62. जगन्नाथराय मंदिर की प्रशस्ति, श्री जगत्सिंह के मांधातृ यात्रा का प्रसंग, श्लोक– 114,115,117,118
63. जगन्नाथराय मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक– 40
64. सीसारमा गांव के वैद्यनाथ महादेव के मंदिर की प्रशस्ति, तृतीय प्रकरण, श्लोक– 4,7,9,10
65. राजप्रशस्ति, सर्ग 8, श्लोक–48
66. चित्तौड़गढ़ के महासती स्थान के दरवाजे (सिया की छात्री) की प्रशस्ति, श्लोक– 6–13
67. राजप्रशस्ति, सर्ग 1/19–24
68. वहीं,तृतीय सर्ग/8–10
69. वीर विनोद भाग–1, चित्तौड़ की महासतियों में समिद्धेश्वर महादेव के मंदिर में लगी हुई मोकलकालीन प्रशस्ति–श्लोक 65,69
70. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ महादेव के मंदिर की प्रशस्ति श्लोक–45
71. सारणेश्वर महादेव के मंदिर की प्रशस्ति।
72. जगन्नाथराय मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–39
73. राजप्रशस्ति सर्ग 5/28,7/26–29,8/14,15
74. श्री एकलिंग के मंदिर में दक्षिणाद्वार के सामने की प्रशस्ति–श्लोक–84
75. जगत्शिरोमणि के मंदिर की प्रशस्ति,श्लोक–19
76. चित्तौड़ के महासती स्थान के दरवाजे की प्रशस्ति–श्लोक–16,17
77. वहीं, श्लोक–43
78. श्री एकलिंग के दक्षिणाद्वार के सामने की प्रशस्ति–श्लोक–25
79. चित्तौड़ की महासतियों में समिद्धेश्वर महादेव की प्रशस्ति, श्लोक–55
80. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ महादेव मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–57,58,61
81. राजप्रशस्ति, सर्ग 6/18–21
82. वहीं, सर्ग 7/3–4
83. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ महादेव के मंदिर की प्रशस्ति, पंचम प्रकरण, श्लोक–15,16
84. गोकुलचन्द्रमा मंदिर की प्रशस्ति–श्लोक–44
85. राजप्रशस्ति सर्ग 5/13, 14
86. वहीं, सर्ग 8/5–7